हिंदी-प्रेमी : विदेशी विद्वान

फादर कामिल बुल्के (1909-1982 : बेल्जियम)

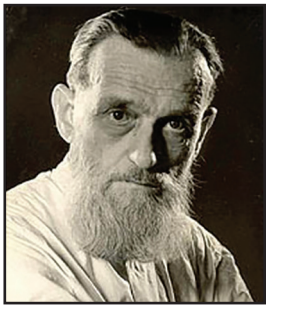

फादर कामिल बुल्के हिंदी के अनन्य प्रेमी थे। इनका जन्म 1 सितंबर, 1909 में बेल्जियम में हुआ था। इन्होंने अपने युवा काल में ही संन्यासी बनकर भारत आने का संकल्प ले लिया था। यहाँ आकर ये राँची के एक स्कूल में पढ़ाने लगे। इन्होंने कोलकाता से बी.ए. किया और फिर इलाहाबाद से एम.ए.। इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में रहकर अपना शोध प्रबंध 'रामकथा उत्पत्ति और विकास' 1950 में पूरा किया। इन्होंने अँग्रेज़ी-हिंदी शब्दकोश भी तैयार किया। इनकी इच्छा हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखने की थी। ये सेंट जेवियर कॉलेज, राँची में हिंदी और संस्कृत के विभागाध्यक्ष भी रहे। इन्होंने भारत में रहकर न सिर्फ़ हिंदी बल्कि ब्रज, अवधी और संस्कृत भी सीखी और बाइबिल का हिंदी अनुवाद भी प्रस्तुत किया। इन्होंने लिखा है–''ईश्वर का धन्यवाद, जिसने मुझे भारत भेजा और भारत के प्रति धन्यवाद, जिसने मुझे इतने प्रेम से अपनाया।'' इनका सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, धर्मवीर भारती आदि कवियों के साथ विशेष प्रेम संबंध रहा। ये मानवीय करुणा की दिव्य चमक थे और अपनों से बराबर मिलते रहते थे। 7 अगस्त, 1982 को फादर कामिल बुल्के का दिल्ली में निधन हो गया। उन्हें कश्मीरी गेट के निकलसन कब्रगाह में दफनाया गया।

पीटर वरन्निकोव (82 साल : रूस)

तुलसीदास और उनके 'रामचरितमानस' के भक्त पीटर वरन्निकोव के बारे में प्रसिद्ध है कि ये भले ही रूसी हों, पर किसी-न-किसी जन्म में हिंदुस्तानी ज़रूर रहे होंगे। भारत इनके दिल में बसता है। इन्हें तुलसीदास की अमर रचना 'रामचरितमानस' ने इतना प्रभावित किया कि इन्होंने इसका अनुवाद रूसी भाषा में कर डाला। यह अनुवाद बेहद चर्चित हुआ। ये 70 के दशक में दिल्ली स्थित सोवियत सूचना केंद्र से जुड़े थे और हिंदी लेखकों की कॉफी हाउस में होने वाली बैठकों में नियमित रूप से आते थे। सोवियत संघ के विघटन तक इन्होंने यहीं रहकर काम किया। रूस में लौटने के बाद इन्होंने वहाँ हिंदी सिनेमा पर केंद्रित एक पत्रिका भी निकाली। ये बढ़ती उम्र की वजह से अब उतने सक्रिय तो नहीं हैं, लेकिन रूस में हिंदी जानने वालों के बीच एक प्रेरक व्यक्तित्व अवश्य हैं।

डॉ. जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन (1851-1941: आयरलैंड)

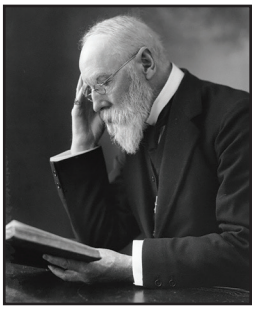

डॉ. जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन अँग्रेज़ों के जमाने में 'इंडियन सिविल सर्विस' के कर्मचारी, बहुभाषाविद और आधुनिक भारत में भाषाओं का सर्वेक्षण करने वाले पहले भाषावैज्ञानिक थे। ये लगभग 1870 में आई.सी.एस. होकर भारत आए थे और बंगाल एवं बिहार के कई उच्च पदों पर 1899 तक कार्यरत रहे और फिर

वापस आयरलैंड चले गए। भारत में रहते हुए इन्होंने कई क्षेत्रों में काम किया। तुलसीदास और विद्यापति के साहित्य का महत्त्व प्रतिपादित करने वाले ये संभवत: पहले अँग्रेज़ विद्वान थे। हिंदी क्षेत्र की बोलियों के लोक साहित्य (गीत-कथा) का संकलन और विश्लेषण करने वाले कुछेक विद्वानों में भी ये अग्रिम पंक्ति के विद्वानों में थे। भारतीय विद्याविशारदों में, विशेषत: भाषाविज्ञान के क्षेत्र में इनका स्थान अमर है। ये 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' के प्रणेता के रूप में अमर हैं। इन्हें भारतीय संस्कृति और यहाँ के निवासियों के प्रति अगाध प्रेम था। भारतीय भाषाविज्ञान के वे महान उन्नायक थे। नव्य भारतीय आर्यभाषाओं के अध्ययन की दृष्टि से इन्हें भांडारकर और हार्नली के समकक्ष रखा जा सकता है। एक सहृदय व्यक्ति के रूप में भी ये भारतवासियों की श्रद्धा के पात्र बने। इन्होंने हिंदी पढ़ने-पढ़ाने के लिए सरकार की सेवाओं की याद में 'डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन पुरस्कार' की स्थापना की, जो केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा भारतीयों को हिंदी के क्षेत्र में विशिष्ट सेवा करने के लिए दिया जाता है।

अकियो हागा (55 साल : जापान)

अकियो हागा जापानी और हिंदी भाषा के विद्वान हैं। भारत में इनका शुरूआती जुड़ाव भगवान बुद्ध की वजह से हुआ। इन्होंने 'टोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज' से हिंदी में एम.ए. करने के बाद वहाँ हिंदी पढ़ाना शुरू किया। इनके सहयोगी रहे डॉ. सुरेश रितुपर्ण के अनुसार, ''अकियो हागा ने जब 9वीं सदी में लिखी गई जापानी कहानी 'ताकेतोरी मोनोगातारी' (बाँस काटने वाले की कहानी) का हिंदी अनुवाद किया, तो हिंदी पढ़ने वाले समाज ने उन्हें बहुत सराहा।'' ये जापान में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए काम कर रहे हैं। ये वर्तमान में 'महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय' वर्धा में बतौर विजिटिंग प्रोफेसर काम कर रहे हैं।

इमरै बंघा (55 साल : हंगरी)

कहाँ हंगरी, कहाँ हिंदी। लेकिन जब लगन लगती है, तो लोग दूर-दराज से खिंचे चले आते हैं। बूड़ापेस्ट यूनिवर्सिटी में इंडोलॉजी की पढ़ाई करते समय इमरै बंघा को भारतीय कवि घनानंद की कविताओं से ऐसा लगाव हुआ कि इन्होंने न सिर्फ़ हिंदी की विधिवत पढ़ाई की बल्कि इस कवि पर भारत में स्थित शांति निकेतन यूनिवर्सिटी से हिंदी में पी.एच.डी. भी की। इनकी लिखी पुस्तक 'सनेह को मारग' ने हिंदी-प्रेमियों को अपने ही कवि को नई रोशनी में देखने की सुविधा प्रदान की। इनके इस काम की प्रामाणिकता इसी बात से प्रमाणित होती है कि इन्होंने घनानंद की जीवनी लिखने के साथ-साथ उनके गुम हुए ऐसे पदों को ढूँढ़ निकाला, जिन्हें प्राप्त करने का कष्ट किसी भारतीय हिंदी-सेवक ने कभी नहीं किया।